रस–ध्वनि सिद्धांत एवं संगीत

डॉ. विजय शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
सनातन धर्म कॉलेज, अम्बाला छावनी

भारतीय काव्य शास्त्र का प्रवर्त्तन काल ईसा पूर्व अज्ञात समय से ईसा की पांचवी सदी के अंत तक कहा जा सकता है। इस समय में भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा सदाशिव से आरम्भ होकर, ब्रह्मा, कश्यप, मतंग कोहल, नारद, तुम्बर, आंजमेय, नन्दिकेश्वर तक देखी जा सकती है। वाल्मीकि और महाकवि कालिदास के कतिपय वाक्यों ने भी काव्यशास्त्र के सिद्धांतों पर प्रकाश डाला है। काव्य शास्त्रीय परम्परा का उल्लेख भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' राजशेखर की काव्य मीमांसा तथा, शारदा तनय के 'भाव प्रकाशन' में व अन्य अनेक ग्रन्थों में विभिन्नता से उपलब्ध हैं। परन्तु भरत से पूर्व का कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं था। अतएव भरत मुनि को ही इस काव्य शास्त्र का प्रवर्तक और उनके 'नाट्यशास्त्र' को अपने विषय का अत्यंत प्रामाणिक व अप्रतिम ग्रंथ माना गया है। नाट्यशास्त्र में नाट्यकला तथा तत् सम्बंधी अन्य कलाओं एव काव्य तत्वों पर विस्तार से विवेचन किया गया।

भरत मुनि के अनुसार रस विषयगत है, जिसका निष्पादन रंगमंच पर अभिनेताओं के द्वारा अनेक उपकरणों के माध्यम से होता है और जिसका अस्वाद दर्शकगण लेते हैं। उनके नाट्यशास्त्र में 32 अध्याय है जिनमें से छठे व सातवें अध्याय में रस और भाव का विवेचन है। उनका मानना है रस अस्वाद्य है। भरतमुनि ने रस को काव्य की आत्मा माना और रस सूत्र दिया – 'विभावनुभाव व्याभिचारी संयोगाद् रस निष्पतिः' अर्थात् विभाव अनुभाव एवं संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पति होती है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए अनेक विद्वानों ने रस सम्बंधी अपनी–अपनी स्थापनाएं की। जिनमें से चार व्याख्याकारों में भट्लोलट ने उत्पत्तिवाद, शंकुक ने अनुमितिवाद, भट्टनायक ने भुक्तिवाद और अभिनव गुप्त ने अभिव्यक्ति वाद की स्थापना की। इन

विद्वानों ने रस सूत्र की व्याख्या द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण उद्‌भावनाएं की काव्य शास्त्र को प्रदान की। भट्‌ट लोलट व शंकुक ने अपनी व्याख्या में यह आक्षेप लगाए कि सहृदय पाठक या दर्शक कवि निर्मित पात्रों के भावों के माध्यम से किस प्रकार रसास्वादन कर सकते हैं ? भट्‌नायक ने इसी प्रश्न के समाधान में साधारणीकरण सिद्धांत को उपस्थित किया और रस की स्थिति सीधे सहृदय में मानीं उनके अनुसार काव्य में तीन शक्तियां होती हैं। (1) अभिधा (2) भावकत्व (3) भोज कत्व। पाठक या सहृदय को अभिधा शक्ति शब्दार्थ ग्रहण होता है। भावकत्व से अर्थ का भावन होता है। भाव का भावन होने पर भाव की वैयक्तिकता का नाश होकर साधारणीकरण हो जाता है। भाव का भोग या भोज कत्व व्यापार ही रस है।

भट्‌नायक के भोगवाद की आलोचना करते हुए अभिनव गुप्त ने उन पर चार आरोप लगाए (1) भावकत्व और भेजकत्व की कल्पना को व्यर्थ है क्योंकि इनका काम लक्षणा व व्यंजना से पूरा हो जाता है। (2) रस और रसभोज में स्पष्ट अंतर नहीं कर पाए (3) रस प्रतीति का खण्डन कर रसभुक्ति की स्थापना संगत नहीं है। (4) भोग के स्वरूप की व्याख्या तात्विक नहीं है।' अग्नि पुराण' में भी रस को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए कहा गया है –

'वाग्वैदभ्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्' अर्थात् काव्य में वाग्वैदभ्ध्य भी प्रधान है, किन्तु उसकी आत्मा रस ही है। 'काव्य मीमांसा में राजशेखर ने 'काव्य–पुरुष' का जो रुपक बांधा है उसमें उन्होंने भी शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर और रस को आत्मा बताया है ''शब्दार्थौं ते शरीरं ..... रस आत्मा'। राजशेखर से पूर्व रुद्रट भी रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए कहते हैं कि रस के सम्यक् परिपाक के बिना कविता की नीरसता सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त आचार्य विश्वनाथ भी रस के प्रबल समर्थक रहे हैं। वह अपने 'साहित्य दर्पण' में वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ...'' 'रस्यते इति रसः' के द्वारा कहते हैं कि रस के बिना काव्यत्व नहीं होता रस काव्य की जीवनभूत आत्मा है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने काव्यशास्त्र पर कोई मौलिक विवेचन नहीं किया, परन्तु रस की उपेक्षा किसी कवि ने नहीं की। रस वादियों में देव, मतिराम कुलपति, मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। देव 'शब्द रसायन' में लिखते हैं – 'काव्य सार शब्दार्थ को रस तेहि काव्य सुसार' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी रसवादियों में से है उनका मत है–''अनूठी से अनूठी उक्ति भी तभी काव्य हो सकती है, जबकि उसका सौन्दर्य, चाहे दूर से

ही सही हृदय के किसी भाव से हो।''

भरतमुनि के अनुसार रस वाच्य नहीं होता, उसकी प्रतीती होती है। यह प्रतीति उक्ति के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से होती है जिसे व्यंजना अथवा ध्वनन कहते हैं। इसी आधार पर ध्वनिकार ने उसे रस ने मानकर रस ध्वनि माना है। रस संवेद्य है पर साधारण भाषा के द्वारा रस को संवेद्य नहीं बनाया जा सकता। उसके लिए भाषा विशेष का प्रयोग किया जाता है जिसके अर्थ के साथ–साथ कल्पना भी जागृत होती है। ध्वनि कार ने इस कल्पना को व्यंजना शक्ति और रस के संवेद्य रूप को रस ध्वनि कहा है और कल्पना तत्व को महत्त्व प्रदान किया। ध्वन्यालोक में आनन्द वर्धन ने ध्वनि सम्प्रदाय की स्थापना कर अन्य सभी सम्प्रदायों का इसमें समावेश कर लिया। उनके अनुसार रस की भांति, रीति, अलंकार, वक्रता आदि व्यंग्य ही होते हैं, ये प्रत्यक्ष रुप से मन को आहलाद नहीं पहुंचाते, अपितु ध्वनि का उपकार करते हुए अपना महत्व रखते हैं पर ध्वनि से भिन्न होकर ये निरर्थक सिद्ध होते हैं। अतः काव्य की आत्मा ध्वनि है रस, अलंकार गुण वक्रता, आदि काव्य की आत्मा अर्थात् ध्वनि के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

अभिनव गुप्न ने नाट्यशास्त्र और ध्वन्यालोक पर 'अभिनव व लोचन' टीकाएं लिखी और ध्वनि सिद्धांत का प्रबल समर्थन किया। आनन्दवर्धन और अभिनव गुप्त ने रस और ध्वनि में अटूट सम्बध स्वीकार किया। आधुनिक विद्वान तो ध्वनि सिद्धांत को रस का ही विस्तार सूत्र मानते हैं। रस सिद्धांत में दो अभाव थे एक तो वह एन्द्रिय आनन्द के प्रति उदासनी था दूसरा प्रबन्ध के अतिरिक्त मुक्तकों को इसमें उचित गौरव प्राप्त नहीं था क्योंकि मुक्तक में विभाव अनुभव संचारी आदि का संघटन ठीक न होने पर रस परिपाक में कठिनाई पड़ती थी। ध्वनि सिद्धांत में व्यंग्यार्थ को महत्व दिया और इसी आधार पर काव्य के तीन भेद भी किए–उत्तम, मध्यम, अधम, ध्वनि के तीन प्रकार वस्तु ध्वनि अलंकार ध्वनि और रस ध्वनि।

जीवन की सभी घटनाएं चाहे वह सुखमय हों या दुखमय जब वह काव्य, संगीत या नाटक के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती हैं तो वह रस ध्वनि के कारण सुखमय बन जाती है। तभी तो यह काव्य सुख, लौकिक सुख से भिन्न होता है और निज पर की भावना से मुक्त होता है यही काव्यानन्द जो ब्रह्मनन्द सहोदर कहा जाता है। भारतीय काव्य शास्त्र में रस कहलाता है जो आनन्द का पयार्य है और पाश्चात्य काव्य शास्त्र में Asthetic Bliss

कहलाता है। इस आनन्द का सम्बन्ध न तो सुख से है न दुख से तभी तो दुःखद कहानी या कारुणिक गीत को सुनते हुए आंसुओं की धारा बहाते हुए भी सहृदय उसमें आनन्द प्राप्त करता है। रस वस्तुतः प्रत्येक मानव के हृदय में संस्कार व भाव रूप में रहता है और उचित कारण पाकर उदीप्त हो जाता है और रस रूप में परिणत हो जाता है। इसके लिए साहित्यकार को ऐसी ध्वनि का स्फोट करना पड़ता है जो उस भाव के अनुकूल हो, उसे जागृत करने में सक्षम हो आकर्षक हो जिसके प्रभाव से सामाजिक अछूता न रह पाए। जिन ध्वनियों में रंजकता नहीं होगी भावाभिव्यक्ति की प्रबलता व संवेगों की गहनता नहीं होगी ऐसी ध्वनियां रस प्रदान नहीं कर सकती। ऐसी ध्वनि जो रंजक हो तथा कान मन और आत्मा को आनन्द प्रदान करे वह श्रुति कहलाती है। भारतीय वाङ्गमय में वेदों के लिए 'श्रुति' शब्द का प्रयोग होता रहा है। इसका अर्थ है उनमें हमारे मन, आत्मा, बुद्धि का आनन्द प्रदान करने की क्षमता है।

संगीत का मुख्य उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में 28 से 33वें अध्याय तक संगीत के हर पक्ष का विवेचन मिलता है। संगीत स्वरों की भाषा है। रंजक स्वर समूह संगीत कहलाता है। राग व रस का अटूट सम्बन्ध है। संगीत में शब्द स्वर लय और ताल के सामंजस्य द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि की जाती है किसी भी कला की लिए यह आवश्यक है कि वह मानव हृदय में स्थित स्थाई भावों को जगा सके और तत्संबंधी रस की उत्पति करे तभी मनुष्य आनन्द की अनुभूति कर सकता है। यही संगीत का भी लक्ष्य है। संगीतज्ञ भरत के अनुसार चार मुख्य रस हैं शृंगार, रोद्र वीर, वीभत्स इन्हीं से क्रमशः हास्य करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति होती है। भरत मुनि ने कहा – सरी वीरेश्चद्भूति रौद्रे धा, वीभत्से भयन के करुण हास्य कार्यो गनोतु शृंगारयोमगौ।।

सा, रे, वीर, रौद्र व अद्भुत रसों के ध वीभत्स तथा भयानक रसों का ग नि करुण रस के तथा म,प हास्या तथा शृंगार रसों के पोषक हैं।

ऊर्जा की एक गूंज है। जो कुछ अस्तित्व में है वह भौतिक है वहां गूज है कंपन है।

वैदिक साहित्य में शब्द ब्रह्म को 'नद' कहा गया है। नद से उत्पन्न ध्वनि को नाद कहा गया है। नद शब्द न और द इस दो वर्णों से मिलकर बना है। 'न' नकार का अर्थ है प्राण अथवा वायु 'द' का अर्थ है अग्नि अथवा ऊर्जा। इन

दोनों के संयोग से नद धवनि उत्पन्न होती है। नाद ऐसी ध्वनि है जिसे कानों से सुना जा सकता है। इस ब्रह्माण्ड में अंसख्य धवनियां हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में ध्वनिमय हैं। पृथ्वी, जल, वायु अग्नि सभी तत्व नाद से प्रभावति हैं। समस्त सृष्टि में स्वयंभू अनाहत नाद विद्यमान है। अनाहत नाद ही अहत नाद का उपादान कारण है। आहत नाद अर्थात् प्रयास के द्वारा आघात के माध्यम से ध्वनि उत्पन्न की जाती है। अनाहत नाद के सूक्ष्म नाद भी कहते हैं। कबीर ने इस नाद के बारे में कहा है – 'तत्त्व ब्रह्मण पठि अर्थात् महाभूतों के परमाणु निरन्तर गतिशील हैं, कंपनशील हैं प्रत्येक कम्पन से जो ध्वनि निकलती है वह अत्यन्त सूक्ष्म है। इस नाद को भारतीय धर्म साधना में मोक्ष का साधन माना गया है।

सामवेद गेय ग्रन्थ है यह भारतीय संगीत का मूल आधार है। ऋचाओं के गायन को ही साम कहते हैं। गीता में कृष्ण द्वारा 'सामवेदोऽस्मि' कह कर इसकी महत्ता को अंकित किया है।

ध्वनियों को एक खास व्यवस्था उसे प्रभावशाली बनाती है एवं माधुर्य प्रदान करती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत मंत्रों का संशोधित रूप है। जिसमें ध्वनि की सुन्दरता या कर्णप्रियता की भी व्यवस्था है। संगीत ध्वनियों की लयबद्ध समरस व्यवस्था है। भारतीय शास्त्रीय संगीत मानव तन्त्र की गहरी समझ से पैदा हुआ है। यह मनुष्य को ब्रह्मांडीय स्तर तक विकसित करने की एक प्रणाली है। मनोरंजन के साथ–साथ अध्यात्मिक जागरूकता भी इसका मुख्य उद्देश्य रहा है। इसमें वास्तविक आनन्द भी स्थिति तक ले जाने की समर्था है। लोकसंगीत में जीवन का उल्लस है। यह युग के अनुरुप करवट लेता है।

संगीत का मूल आधार नाद है राग निष्पति में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है यदि नाद मधुर व मनमोहक होता है तो श्रोता को अधिक आनन्दित करता है। नाद में तो जड़ प्रकृति को भी प्रभावित करने की शक्ति होती है। ऐसे अनेक प्रयोग अनेक क्षेत्रों में किए जा चुके हैं जिनके चमत्कारिक परिणाम सामने आए हैं। ओमकार नाथ ठाकुर ... '' संगीत में शब्द के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस की प्रतीती हो जाती है। यहां तक कि शब्द हो या न हो नाद के बल से संगीत में रस निष्पति हो जाती है। इसी से यह मानना पड़ता है कि नाद में कोई शक्ति सन्निहित है जो कि शब्दों की वाचक शक्ति की सहायता के बिना ही अर्थ तत्त्व या रस की प्रतीती करा देती है।

संदर्भ सूची

1. काव्य शास्त्र की रूपरेखा – डॉ. रामपत भारद्वाज
2. भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका – डू. नगेन्द्र
3. भारतीय काव्य शास्त्र – सत्यदेव चौधरी
4. कला एवं साहित्य . प्रव्ति और परम्परा प्रो. विश्वनाथ प्रसाद
5. संगीत और रस शोधपत्र–डॉ. अनिल रानी